THE TIMES OF INDIA

Date:11-06-22

Asia's Highland

India should reverse its 1980s ban on marijuana.

TOI Editorials

Thailand, often referred to as the land of smiles, gave some of its citizens another reason to be happy – by being the first Asian nation to decriminalise marijuana for medical and industrial use. Although it is stopping short of examples set by Canada and Uruguay, which have decriminalised recreational marijuana as well. What Thailand's move means is that farmers will be able to grow the plant while entrepreneurs can sell cannabis-infused food, drinks and cosmetics. There are two caveats – smoking pot in public will still be outlawed while possession and sale of cannabis extracts containing more than 0. 2% of its psychoactive ingredient, tetrahydrocannabinol (THC), will not be allowed.

Still, Thailand's part decriminalisation of marijuana is expected to fetch the industry as much as $435 million by 2026. That's an economic high amid the Covid-induced downturn. India continues to stick to a grey area where only certain parts of the plant (bhang leaves) and certain uses (medical and scientific) are allowed. This system came about because India had given in to American pressure in the 1980s and banned all narcotic substances. But since then the US has reversed course and today 19 American states allow recreational marijuana.

Therefore, it makes little sense to keep marijuana in the proscribed list, clog up courts by prosecuting low quantities of possession, drive the trade underground and eschew legitimate revenue. Before the ban, India had a centuries-old tradition of marijuana use as part of its culture. Decriminalising marijuana fully makes legal sense, as well as an economic one.

THE ECONOMIC TIMES

Date:11-06-22

On the Environment Index, Best to Act

India should conduct an honest self-assessment.

ET Editorials

India is ranked 180th among 180 countries in the Environmental Performance Index (EPI) 2022 that was released on June 6. The index is a composite of 40 data-driven performance indicators by Yale and Columbia University researchers that ranks countries on their national efforts to protect environmental health, enhance ecosystem vitality and mitigate climate change. GoI has responded, stating that some indicators are extrapolated and based on surmises and unscientific methods.

India's critique of EPI is not without basis. Many such indices become the basis of assumptions and arguments and are often used as inputs by investors. Sometimes, it is about countering efforts to normalise certain viewpoints, such as the level of responsibility of different countries to reduce greenhouse gas emissions. GoI has raised the absence or low weightage given to the principle of equity, which is the basis of the global effort to tackle climate change. Taken on board, the outcome on climate mitigation in the index would have been different. But the real question before the government must be the meritof undertaking this critique. Does it help India's cause to take on every index or report that casts it in a poor light? Would it not be better served by making public its efforts, plans, policies as well as the reasons for these gaps, which could range from access to finance, technology and capacity to take action?

In the final analysis, the only real and meaningful response is facts. India must ensure that information on its efforts and outcomes is accessible and verifiable. This will help provide a better picture of the country's environmental performance. The country needs to make a self-assessment of whether its environmental performance is where it should be. It must determine whether it is taking enough right measures and putting in policy focused on improving human well-being, reducing environmental degradation and growing the economy sustainably. Otherwise, its critiques become indistinguishable from petulance.

दैनिक जागरण

Date:11-06-22

क्वाड के समक्ष लक्ष्य साधने की चुनौती

ब्राह्मा चेलानी, (लेखक सामरिक मामलों के विश्लेषक हैं)

हिंद-प्रशांत क्षेत्र के प्रमुख लोकतंत्रों का रणनीतिक गठबंधन क्वाड अब संकल्पना से अधिक यथार्थ का रूप ले रहा है। चीनी विदेश मंत्री वांग यी ने एक वक्त इसका उपहास उड़ाते हुए इसे सुर्खियां बटोरने की कवायद बताया था, जो प्रशांत या हिंदू महासागर में किसी बुलबुले के मानिंद कहीं गुम हो जाएगी। हालांकि, चीन की विस्तारवादी नीतियों के चलते ही आस्ट्रेलिया-भारत-जापान और अमेरिका का क्वाड गठबंधन जोर पकड़ रहा है। चूंकि अमेरिकी प्रभुत्व कमजोर पड़ रहा है तो अमेरिका को अपने साथियों संग मिलकर अपनी पकड़ मजबूत बनाने की दिशा में आगे बढ़ना होगा। एक खुले एवं स्वतंत्र हिंद-प्रशांत क्षेत्र के लिए क्वाड अमेरिकी रणनीति के केंद्र में है। आस्ट्रेलिया और ब्रिटेन के साथ 'आकस' जैसी पहल के बावजूद अमेरिका के लिए क्वाड की अहमियत जरा भी कम नहीं। स्पष्ट है कि भारत, जापान और आस्ट्रेलिया को साथ लिए बिना अमेरिका एशिया में स्थायित्वपूर्ण शक्ति संतुलन नहीं बना सकता। अमेरिका भी इसे भलीभांति समझता है। यही कारण है जहां लंबे समय तक क्वाड की कोई बैठक नहीं हुई, वहीं जो बाइडन के राष्ट्रपति बनने के बाद 14 महीनों के भीतर क्वाड नेताओं की चार बैठकें आयोजित हो चुकी हैं, फिर भी इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता कि क्वाड की राह में अभी भी तमाम चुनौतियां कायम हैं। सदस्य देशों को उनका समाधान तलाश इस संगठन को तार्किक बनाने के लिए सक्रिय रहना होगा।

आंकड़ों के अनुसार, अमेरिका और भारत इस समय चीन के भीमकाय व्यापार अधिशेष में सबसे बड़ा योगदान कर रहे हैं। इसी आर्थिक ताकत के दम पर चीन का सामरिक खतरा बढ़ रहा है। क्वाड का एक उद्देश्य चीन की सामरिक शक्ति से उपजे खतरे की काट करना है। दूसरी ओर आस्ट्रेलिया एवं जापान, दोनों ने बीजिंग प्रवर्तित क्षेत्रीय व्यापक आर्थिक साझेदारी यानी 'आरसेप' को मूर्त रूप देने में अहम भूमिका निभाई है। उन्हें 'आरसेप' से भारी आर्थिक लाभ होने की उम्मीद है, भले ही इससे हिंद-प्रशांत क्षेत्र में व्यापार के गणित को तय करने में चीन की ताकत ही क्यों न बढ़ जाए। चीन लंबे समय से विदेशी व्यापार को राजनीतिक संबंधों से अलग रखने की मुहिम चला रहा है और यह रणनीति क्वाड सदस्य देशों के साथ बढ़िया साबित होती दिख रही है। गत वर्ष चीन का व्यापार अधिशेष 676.4 अरब डालर के रिकार्ड स्तर पर रहा। महामारी के बावजूद विदेशी व्यापार में इतनी ऊंची बढ़त ही चीनी अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करती रही, अन्यथा वह पटरी से उतर जाती। चीनी व्यापार अधिशेष में अमेरिका ही सबसे अहम किरदार है। 2021 में चीन के साथ अमेरिका का व्यापार घाटा 25.1 प्रतिशत बढ़कर 396.6 अरब डालर की नई ऊंचाई पर पहुंच गया। दूसरे शब्दों में कहें तो चीन के व्यापार अधिशेष में 60 प्रतिशत का योगदान अकेले अमेरिका का है। वहीं भारत की बात करें तो इस साल चीन के साथ उसका व्यापार घाटा 88 अरब डालर तक पहुंचने का अनुमान है। यह पहले ही भारत के रक्षा बजट को पार कर चुका है। वह भी ऐसे समय में जब चीन के साथ पिछले दो वर्षों से सीमा पर तनातनी चल रही है। इसके बावजूद सरकार चीन से जुड़े इस जोखिम को कम करके आंकती दिख रही है। आस्ट्रेलिया और जापान की भी चीन से कारोबारी निकटता

है। ऐसे में इस समस्या का सबसे अच्छा समाधान यही दिखता है कि क्वाड देश चीन पर निर्भरता बढ़ाने के बजाय परस्पर व्यापार को वरीयता दें।

बीते दिनों टोक्यो में हुई क्वाड सदस्य देशों की बैठक से पहले अमेरिका ने इस दिशा में एक पहल की है। इसे हिंद-प्रशांत आर्थिक ढांचा यानी आइपीईएफ नाम दिया गया है। यह कोई व्यापारिक व्यवस्था न होकर एक आर्थिक मंच है। इसका उद्देश्य भारत सहित 13 सदस्य देशों के बीच आपूर्ति श्रृंखला, स्वच्छ ऊर्जा और डिजिटल नियमों के क्षेत्र में सहयोग बढ़ाना है। यह पहल व्यापार बाधाओं या टैरिफ घटाए बिना ही की गई है। दूसरी ओर बाइडन प्रशासन चीन पर लगे व्यापार टैरिफ घटाने की दिशा में विचार कर रहा है, जबकि पहले उसने यही एलान किया था कि जब तक चीन अपना व्यवहार नहीं सुधारेगा, तब तक ये टैरिफ जारी रहेंगे। इस तरह देखा जाए तो बाइडन के नेतृत्व में क्वाड का ध्यान वैश्विक चुनौतियों के मामले में भी बदलता जा रहा है। ये चुनौतियां जलवायु परिवर्तन और साइबर सुरक्षा से लेकर वैश्विक स्वास्थ्य और लचीली आपूर्ति श्रृंखला से जुड़ी हैं। अपने छोटे दायरे को देखते हुए क्वाड व्यापक अंतरराष्ट्रीय चुनौतियों से निपटने में सक्षम नहीं दिखता। फिर भी मार्च 2021 के अपने पहले सम्मेलन में क्वाड देशों ने जलवायु परिवर्तन, वैक्सीन और अहम एवं उभरती तकनीकों को लेकर कार्यकारी समूह गठित किए। उसी साल सितंबर में जब क्वाड नेता व्हाइट हाउस में मिले तो साइबर सुरक्षा, इन्फ्रास्ट्रक्चर एवं अंतरिक्ष जैसे विषयों पर तीन और समूह बना दिए। बहरहाल वादे, इरादे और उन्हें पूरा करने के बीच अंतर तो वैक्सीन के मामले में ही दिख गया, जब अमेरिका ने भारत के वैक्सीन निर्माण से लेकर अन्य देशों को उसकी उपलब्धता की राह में अवरोध पैदा कर दिए।

क्वाड का टोक्यो सम्मेलन यही दोहराता है कि अत्यंत महत्वाकांक्षी एजेंडा न केवल क्वाड के हिंदू-प्रशांत फोकस को कमजोर करेगा, बल्कि इससे समूह को परिणामोन्मुखी बनाना भी मुश्किल होगा। वैसे भी एक ऐसे दौर में जब अमेरिका यूक्रेन को हथियार आपूर्ति से लेकर तमाम अन्य किस्म की मदद के माध्यम से रूस के साथ छद्म युद्ध में उलझा हुआ है, तब क्वाड के समक्ष नई अनिश्चितताएं उत्पन्न हो गई हैं। ऐसी स्थिति में बाइडन को यह भी नहीं भूलना चाहिए कि चीन में रूसी अर्थव्यवस्था को सहारा देने की क्षमता है। नि:संदेह सदस्य देशों की निरंतर बैठक और व्यापक सक्रियता से क्वाड मजबूत हो रहा है, लेकिन खतरा यह है कि इससे वह अपनी रणनीतिक दृष्टि और उद्देश्य से भटक सकता है। क्वाड इस समय चौराहे पर खड़ा है। अगर वह कोई ऐसा शोपीस नहीं बनना चाहता है, जो केवल चीनी विस्तारवाद को बढ़ावा देता हो तो उसके सदस्य देशों को एक स्पष्ट रणनीतिक दिशा एवं मायने तलाशने होंगे। इसका पहला चरण तो यही होगा कि क्वाड वैश्विक चुनौतियों के बजाय हिंद-प्रशांत क्षेत्र से जुड़े मुद्दों से निपटने पर ध्यान केंद्रित करे।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:11-06-22

नीतियों में बार-बार बदलाव से पैदा होती है अनिश्चितता

प्रसेनजित दत्ता, (लेखक बिज़नेस टुडे और बिज़नेस वर्ल्ड के पूर्व संपादक तथा संपादकीय सलाहकार संस्था प्रोजैकव्यू के संस्थापक हैं)

गेहूं के निर्यात पर प्रतिबंध लगाने की घोषणा के बाद भी मामला अब तक पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। केंद्रीय वाणिज्य मंत्रालय ने हाल ही में एक पूर्व शर्त रखी कि सरकार से सरकार के स्तर पर निर्यात किए जाने वाले गेहूं का इस्तेमाल केवल घरेलू खपत के लिए किया जाएगा और उसे किसी अन्य देश को निर्यात नहीं किया जाएगा। इस बीच समाचार पत्रों में प्रकाशित खबरों के अनुसार बांग्लादेश को भेजा जाने वाला चार लाख टन गेहूं जो हजारों ट्रकों में लदा हुआ है, वह भी पश्चिम बंगाल में फंसा रहा है क्योंकि सीमा शुल्क अधिकारी उसे आगे नहीं जाने दे रहे।

ऐसे में इस समूचे घटनाक्रम पर एक त्वरित निगाह डालने की आवश्यकता है। रूस-यूक्रेन युद्ध ने विश्व स्तर पर गेहूं की कमी पैदा की क्योंकि यूक्रेन दुनिया के सबसे बड़े गेहूं निर्यातक देशों में से एक है। वैश्विक स्तर पर गेहूं की कीमतों में मजबूती को भारतीय किसानों तथा कारोबारियों के लिए एक बड़े अवसर के रूप में देखा गया क्योंकि वे विश्व बाजार मे अपना माल बेच सकते थे। प्रधानमंत्री ने तो यहां तक दावा कर दिया था कि भारत दुनिया का पेट भरने में सक्षम है और वह गेहूं आपूर्ति के मामले में यूक्रेन की कमी को पूरा कर सकता है।

भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा गेहूं उत्पादक है लेकिन वह गेहूं का बड़ा निर्यातक नहीं रहा है। केंद्रीय वाणिज्य मंत्रालय ने एक कार्यबल गठित किया और नौ देशों में एक प्रतिनिधिमंडल भेजने का निर्णय लिया ताकि भारतीय गेहूं को प्रोत्साहित किया जा सके। प्रतिनिधिमंडल की रवानगी के महज एक दिन पहले सरकार ने अचानक यह घोषणा कर दी कि गेहूं के निर्यात पर तत्काल प्रभाव से रोक लगायी जाती है।

निर्यात पर अचानक प्रतिबंध लगाने की घोषणा से अफरातफरी का माहौल बन गया। बंदरगाहों पर जाने के लिए ट्रकों पर लदी गेहूं की खेप वहीं फंस गई क्योंकि यह स्पष्ट नहीं था कि उन्हें जहाजों पर लादा जाएगा अथवा नहीं। जिन किसानों ने अपनी उपज सरकारी एजेंसियों को नहीं बेची थी क्योंकि वे ऊंची वैश्विक कीमतों का लाभ उठाना चाहते थे वे भी अचानक उठाए गए इस कदम से फंस गए।

इसके पश्चात स्पष्टीकरण आने शुरू हुए। कहा गया कि जिन अनुबंधों पर निजी कारोबारी पहले हस्ताक्षर कर चुके हैं उन्हें निर्यात करने दिया जाएगा। यह भी कहा गया कि सरकारों के बीच होने वाले सौदे जारी रहेंगे। ताजा ब्योरे के अनुसार भारत से गेहूं खरीदने वाले देशों को उसका घरेलू इस्तेमाल करना होगा। यह उचित निर्णय है हालांकि इसे शुरुआत में ही स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए था।

गेहूं निर्यात पर प्रतिबंध की घोषणा ने बहस को जन्म दे दिया। आलोचकों का कहना है कि अचानक उठाए गए इस कदम से एक विश्वसनीय कारोबारी साझेदार के रूप में भारत की प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचेगी। अन्य तरीकों की बात करें तो घरेलू खरीद मूल्य में इजाफा करके भी लक्ष्य हासिल किया जा सकता था। सरकार के निर्णय के समर्थकों का कहना है कि भारत को अतिरिक्त अनाज को बाहर बेचने से पहले अपने देश में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

दोनों ही दलीलों में दम है लेकिन ये एक बड़े बिंदु की अनदेखी करती हैं। बीते कुछ वर्षों से भारत का नीति निर्माण और हमारी नीतिगत घोषणाएं जल्दबाजी में की जाती हैं और बाद में उन्हें उतनी ही जल्दबाजी में संशोधित किया जाता है या बदल दिया जाता है।

हर महीने और हर सप्ताह अधिसूचनाओं एवं स्पष्टीकरण का आना जारी रहता है। उनमें से कुछ विरोधाभासी होती हैं और उन्हें आगे और अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता होती है। उच्च स्तरीय अधिकारियों की ओर से कोयला

खरीद/आयात, दूरसंचार, कोविड-19 टीके के निर्यात, ई-कॉमर्स तथा यहां तक कि इलेक्ट्रिक वाहन बनाम पेट्रोल-डीजल इंजन को लेकर की गई घोषणाओं के मामले में भी ऐसा देखने को मिला। वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) तथा ऋणशोधन अक्षमता एवं दिवालिया संहिता (आईबीसी) जैसे बड़े कानूनों की बात करें तो यहां भी अधिसूचना, बदलाव, संशोधन एवं स्पष्टीकरण आदि आमतौर पर देखने को मिलते रहे। मूल कानून पारित होने के बाद बहुत लंबे समय तक इनका सिलसिला चलता रहा। आईबीसी के मामले में तो आगे भी संशोधनों की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। जीएसटी के मामले में दरों के साथ लगातार छेड़छाड़ की जा रही है जबकि इसे जारी किए हुए करीब पांच वर्ष का समय बीत चुका है। कोई भी नीति पहले दिन से एकदम परिपूर्ण नहीं हो सकती। ऐसे में समय के साथ प्रतिपुष्टि के आधार पर उनमें संशोधन करना और उन्हें बेहतर बनाना भी समझ में आता है।

बहरहाल, एक धारणा जो जोर पकड़ रही है वह यह है कि भारत में नीतिगत घोषणाएं अक्सर पर्याप्त चर्चा और बहस के बिना ही कर दी जाती हैं। अक्सर नियमों के मसौदे अलग-थलग ढंग से तैयार कर लिए जाते हैं और उन लोगों से कोई मशविरा नहीं लिया जाता जो उनसे प्रभावित होने वाले होते हैं। ज्यादातर मामलों में घोषणाएं अल्पावधि पर केंद्रित होती हैं और उनकी प्रकृति भी प्रतिक्रियावादी होती है, बजाय कि सुविचारित रणनीतियों के।

यह भी संभव है कि प्रतिपुष्टि उच्चतम स्तर पर नहीं पहुंचे और उसके पूर्व ही घोषणाएं हो जाएं। गेहूं से जुड़े प्रतिनिधिमंडल और निर्यात प्रतिबंध की बात करें तो जमीनी अधिकारियों को यह बात तो पता ही होगी कि गर्म हवा के थपेड़ों के कारण फसल प्रभावित हुई है और उत्पादन अनुमान के मुताबिक नहीं हुआ है। शायद उनकी रिपोर्ट उन अधिकारियों के पास बहुत देर से पहुंचीं जो प्रतिनिधिमंडल भेजने की तैयारी कर रहे थे। लेकिन तथ्य यही है कि यह कोई इकलौती ऐसी घटना नहीं है। चिंता का विषय भी यही है। बिजली उत्पादकों के सामने कोयले का संकट और गर्मियों में मांग में बढ़ोतरी का अनुमान लगाने में उनकी नाकामी भी ऐसा ही उदाहरण है। बिजली संयंत्रों में कोयले की कमी सरकार के जागने के बहुत पहले से अखबारों की सुर्खियां बनती रही।

नीतियों को वापस लेना और उनमें बदलाव इतनी जल्दी-जल्दी होता है कि घरेलू और वैश्विक कारोबारी तक इससे उलझन में हैं। कोई भी निवेशक चाहता है कि नीतिगत दिशा स्पष्ट रहे तथा जमीन पर पैसा लगाने के पहले वह स्थिरता सुनिश्चित करना चाहता है। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार पर अक्सर यह आरोप लगता रहा है कि वह नीतिगत पंगुता की शिकार थी। ऐसा इसलिए कि वहां इतनी बहसें होती थीं कि समय पर कोई नीति बन ही नहीं पाती थी। मौजूदा प्रशासन की बात करें तो दिक्कत इसके उलट है। नीतिगत घोषणाएं बहुत जल्दी की जाती हैं और उतनी ही जल्दी उन्हें पलट भी दिया जाता है।

जनसत्ता

Date:11-06-22

लैंगिक असमानता से उठते सवाल

ज्योति सिडाना

संयुक्त राष्ट्र की एजंसी 'यूएन वीमैन' की रिपोर्ट कहती है कि परिवार विविधता वाला ऐसा स्थान होता है जहां अगर सदस्य चाहें तो लड़के-लड़कियों के बीच समानता के बीज आसानी से बोए जा सकते हैं। इसके लिए जरूरी है कि परिवारों के सदस्यों को महिला अधिकारों के बारे में जागरूक बना कर उन्हें हर नीति और फैसले में शामिल किया जाए। अगर इस बात को लोग अपने व्यवहार में शामिल कर लें तो हर समाज और राष्ट्र की तस्वीर ही अलग होगी। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी कहा था कि किसी देश की स्थिति वहां की महिलाओं की स्थिति से समझी जा सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज भी महिलाओं की स्थिति कोई बहुत संतोषजनक नहीं है। यही कारण है कि समाज और राष्ट्र आज अनेक विसंगतियों व संकटों के दौर से गुजर रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट कहती है कि ऐसे कानून, नीतियां और कार्यक्रम लागू करने की जरूरत है जिनसे परिवारों के सदस्यों की जरूरतों को पूरा करने के साथ-साथ उनकी प्रगति और खुशहाली के लिए भी अनुकूल माहौल बन सके। विशेष रूप से लड़कियों और महिलाओं के लिए ऐसा करना जरूरी है। अब तक हम देखते आए हैं कि दुनिया भर में महिलाओं के अस्तित्व, अधिकार और निर्णय लेने की क्षमता को नकारने का चलन आज भी बदस्तूर जारी है। परिवारों की संस्कृति और मूल्यों की दुहाई के नाम पर महिलाओं के निर्णयों और उनके अधिकारों की बलि चढ़ा दी जाती है। 'लोग क्या कहेंगे' जैसे कथन केवल महिलाओं के लिए ही होते हैं। इसीलिए यह सवाल भी उतना ही प्रासंगिक है कि पुरुषों को परिवार के मूल्यों, संस्कृति, नैतिकता और समाज के नियमों की उपेक्षा का डर क्यों नहीं दिखाया जाता। संभवत: इसलिए कि समाज केवल पुरुषों से निर्मित है या फिर पुरुष अपनी सर्वोच्चता बनाए रखने के लिए ही ऐसे असमानता मूलक समाज को निरंतरता प्रदान करते आए हैं। यही कारण है कि अनेक बदलावों और कानूनों के बावजूद भी घरेलू हिंसा या महिलाओं के विरुद्ध होने वाली किसी भी प्रकार की हिंसा को समाज में अपराध नहीं, अपना अधिकार माना जाता है। कई सर्वेक्षणों में यह सामने आया है कि अधिकांश महिलाओं ने भी पति / पुरुष द्वारा प्रताड़ित होने को अपनी किस्मत मान कर स्वीकार कर लिया। अगर महिलाएं स्वयं ऐसा सोचती हैं तो फिर पुरुष आबादी की सोच में बदलाव की बात सोचना एक चुनौती ही है।

आज भी कई ऐसे देश और समाज ऐसे हैं जहां लड़कियों को अपने परिवार की संपत्ति और विरासत में हिस्सा पाने का कोई अधिकार नहीं है। इसमें संदेह नहीं है कि वर्तमान समय में कानून द्वारा माता-पिता की संपत्ति में बेटियों को भी बेटे के समान ही अधिकार प्राप्त हो गए हैं। लेकिन तब भी बेटियों से अपेक्षा यही की जाती है कि वे खुशी-खुशी अपना हिस्सा छोड़ दें या भाई के नाम कर दें। भौतिकतावाद की आंधी ने रिश्तों को ही तार-तार कर दिया है, जिसका प्रभाव समाज के हर तबके और हर आयु के लोगों पर देखा जा सकता है। तेजी से विस्तार लेते प्रौद्योगिकी युग में हर रिश्ते में भावनाएं समाप्त होती जा रही हैं। हर कोई अपने आभासी संसार में व्यस्त है। ऐसे में महिलाओं की स्थिति तो और भी खराब है। परिवारों में समाजीकरण के दौरान अनेक तरह के संकोच और डर महिलाओं के व्यक्तित्व में इस कदर भर दिए जाते हैं कि वे स्वतंत्रता, लोकतंत्र, उदारवाद, खुलापन, समानता, न्याय जैसे मूल्यों को अपने एवं अपने परिवार के विरोधी मूल्य मानने लगती हैं। यही पक्ष महिला को कभी पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर इकाई नहीं बनने देते।

कुछ समय पहले महाराष्ट्र में एक अहम फैसला लेते हुए राज्य में विधवा प्रथा बंद करने का फैसला लिया गया है। कुछ समय पूर्व सबसे पहले कोल्हापुर की एक ग्राम पंचायत ने इस फैसले को लागू किया था। इसके बाद राज्य की सभी ग्राम पंचायतों से इसे लागू करने को कहा गया। अगर किसी महिला के पति की मृत्यु हो जाती है तो उसके अंतिम संस्कार के बाद महिला की चूड़ियां तोड़ने और माथे से सिंदूर पोंछने, मंगलसूत्र निकालने जैसे कृत्य नहीं किए जाएंगे। एक लंबे समय बाद ही सही, किसी ने यह सोचा तो सही कि पति की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी को एक जिंदा लाश की तरह जीवन

जीने को क्यों बाध्य किया जाना चाहिए? यह एक विसंगति ही तो है कि पुरुष के विधुर होने पर उसके जीवन जीने के ढंग में कोई बदलाव नहीं किया जाता, उस पर किसी भी प्रकार के कोई प्रतिबंध नहीं लगाए जाते, लेकिन महिला के विधवा होने पर उसके रंगीन कपड़े पहनने, शृंगार करने पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है। आश्चर्य की बात है कि आधुनिकता के दौर में हर चीज में बदलाव को स्वीकार कर लिए गया है। बस महिलाओं के प्रति सोच नहीं बदली है। परंतु महाराष्ट्र सरकार का यह महत्वपूर्ण फैसला महिलाओं की स्थिति में सुधारने की दिशा में एक मजबूत कदम माना जा सकता है। देश के अन्य भागों में भी ऐसी पहल की जानी चाहिए। इस तरह के छोटे-छोटे कदमों से ही महिलाओं के लिए एक समानता मूलक समाज की कल्पना साकार की जा सकती है।

आज भी ज्यादातर घर-परिवारों में महिलाओं को अपने स्वास्थ्य के बारे में भी खुद निर्णय लेने का अधिकार तक नहीं होता। महिलाएं दिन-रात परिवार के सदस्यों की देखभाल और घरेलू कामकाज में व्यस्त रहने के बावजूद भी यही सुनती आई हैं कि तुम सारा दिन करती क्या हो। यही सोच पुरुषों और महिलाओं के बीच असमानता का एक मुख्य कारण कहा जा सकता है। यही सोच बिना किसी बदलाव के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती रहती है। यह बात भी सच है कि समाज में बदलाव वही लोग ला सकते हैं जो अनेक विरोधों के बावजूद भी धारा के विपरीत बहने का साहस रखते हैं। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिसमे लड़कियों और उनके परिवार ने ऐसा कर दिखाया है। हाल में विमेंस वर्ल्ड बाक्सिंग चैंपियनशिप में देश के लिए इकलौता गोल्ड मैडल जीतने वाली निखत जरीन ने अगर लोगों के तानों और सोच की परवाह की होती कि लड़की को ऐसे खेल नहीं खेलने चाहिए जिसमे उसे छोटे कपड़े पहनने पड़ें, तो आज वह विश्व विजेता नहीं बन पाती। विश्व चैंपियनशिप में स्वर्ण जीतने वाली भारतीय महिलाओं में अभी पांच महिलाएं शामिल हैं। किसी ने सही ही लिखा है- 'कहां हारती हैं औरतें, उन्हें तो हराया जाता है...लोग क्या कहेंगे, यह कह कर डराया जाता है।'

ऐसा नहीं है कि महिलाओं की स्थिति सुधारने की दिशा में यह कोई पहला कदम है। मीराबाई, भंवरी देवी, अमृता देवी आदि के प्रयासों को इन उदाहरणों में शामिल किया जा सकता है। मी टू जैसा आंदोलन भी महिलाओं द्वारा अपने विरुद्ध होने वाले शोषण व दमन के खिलाफ आवाज का एक उदाहरण है। परंतु इस बात की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती कि अकेले महिलाओं द्वारा किए गए विरोध उतने सफल परिणाम नहीं दे पाते जितने महिला और पुरुष के साझा प्रयासों द्वारा किए गए बदलाव दे सकते हैं। क्योंकि जब तक समाज का प्रभुत्वशाली तबका यानी पुरुष वर्ग अपनी सोच में बदलाव के लिए तैयार नहीं होगा, तब तक महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक बदलाव की उम्मीद बेकार है। सवाल उठता है कि क्या महाराष्ट्र राज्य में उठाया गया कदम अन्य राज्यों में भी मूर्त रूप ले पाएगा?

Live हिन्दुस्तान.com

Date:11-06-22

एक दल की कठपुतली न बन जाए राष्ट्रपति

सैय्यद काजी करीमुद्दीन, स्वतंत्रता सेनानी

इस अनुच्छेद के वाक्य खण्ड 1 के उप-वाक्य खण्ड (2) में कहा गया है, चुनाव एक निर्वाचक मण्डल द्वारा होगा, जिसमें- (ख) सभी इकाइयों की धाराओं के सदस्य अथवा जहां दो सभाएं हों, वहां (क) संघ की दोनों सभाओं के सदस्य और निचली धारासभा (लोकसभा) के सदस्य शामिल होंगे।

राष्ट्रपति का चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर करने से संबंध रखने वाले सभी संशोधन यद्यपि वापस ले लिए गए हैं, फिर भी इस परिषद को समझाना चाहता हूं कि यह निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर क्योंकर वांछनीय है।

इस विषय में निर्णय मुख्यत: इस बात पर निर्भर करता है कि शासन प्रबंध की पद्धति गैर-पार्लियामेण्टरी होगी अथवा पार्लियामेण्टरी। मेरा विचार है कि भारत में विरोधी राजनीतिक दलों, विभिन्न सिद्धांतों तथा अन्य बहुत सी बातों को देखते हुए, देश में शांति और व्यवस्था को कायम रखने के तथा मंत्रिमण्डल में सभी दलों के प्रभावशाली प्रतिनिधित्व की दृष्टि से यह आवश्यक है कि शासन प्रबंध गैर-पार्लियामेण्टरी पद्धति पर आधारित हो। वयस्क मताधिकार के सिद्धांत पर अमल न करने के लिए केवल एक तर्क पेश किया गया है, निर्वाचन करने के लिए बहुत बड़ी व्यवस्था करनी पड़ेगी और राष्ट्र की संपूर्ण शक्ति इन्हीं चुनावों में खर्च हो जाएगी। परंतु यह तो सर्वथा कोई कारण नहीं है।

संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देश में राष्ट्रपति का निर्वाचन वयस्क मताधिकार से होता है और मेरा विचार है कि यदि राष्ट्रपति का चुनाव हर पांचवें या चौथे वर्ष वयस्क मताधिकार से हो, तो उससे आम जनता को जागृत करने का अवसर मिल सकेगा, उसके सामने महत्वपूर्ण आर्थिक समस्याएं रखी जाएंगी। यदि राष्ट्रपति का निर्वाचन अखिल भारतीय आधार पर होगा, तो उससे आम जनता में जागृति पैदा की जा सकेगी।

वर्तमान वाक्य खण्ड 1 के उप-वाक्य खण्ड (2) के अंतर्गत तो राष्ट्रपति केवल बहुसंख्यक दल की कठपुतली बन जाएगा और संपूर्ण यूनियन के लिए राष्ट्रपति का निर्वाचन वे लोग करेंगे, जिन्होंने चुनाव आंशिक रूप से प्रांतीय आधार पर और आंशिक रूप से अखिल भारतीय आधार पर लड़े हैं।

कल जब हम राष्ट्रपति को दिए गए अधिकारों पर बहस कर रहे थे, तो यह विचार प्रकट किया गया था कि उसे व्यापक अधिकार प्रदान किए गए हैं। उसे किसी प्रांत के संपूर्ण विधान अथवा उसके किसी भाग को स्थगित कर देने का अधिकार होगा। जिस राष्ट्रपति को बहुसंख्यक दल का भय होगा और जो उप-वाक्य खण्ड 2 के अंतर्गत निर्वाचकों द्वारा चुना जाएगा, मेरे विचार में वह संपूर्ण राष्ट्र का अखिल भारतीय आर्थिक आधार पर अथवा अखिल भारतीय मामलों में प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेगा। इस संबंध में एक और महत्वपूर्ण कठिनाई है। रियासतों की सुविधा की दृष्टि से हमने यह स्वीकार कर लिया है कि रियासती धारासभाओं के सदस्य यूनियन की निचली सभा के सदस्य होंगे।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि रियासतों में लोकप्रिय शासन नहीं है, और रियासतों की धारासभाओं (बाद में विधानसभाओं) में संभवत: ऐसे व्यक्ति होंगे, जो उनके शासकों द्वारा नामजद किए गए होंगे अथवा जो जनता के वास्तविक प्रतिनिधि नहीं होंगे, ऐसे प्रतिनिधियों द्वारा जिनकी संख्या मतदाताओं की संख्या के लगभग एक तिहाई जितनी होगी, ... सभापति (राष्ट्रपति) के निर्वाचन का अर्थ होगा कि वह रियासती जनता का प्रतिनिधि न बनकर रियासती शासकों द्वारा नामजद किए गए व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करेगा। इन परिस्थितियों में राष्ट्रपति को रियासतों की जनता का सच्चा प्रतिनिधि कदापि नहीं कहा जा सकता।

इन परिस्थितियों में, मैं इस परिषद से जोरदार अपील करता हूं कि यदि आप लोकतंत्रीय शासन चाहते हैं, यदि आप यह चाहते हैं कि राष्ट्रपति ऐसे लोगों का सच्चा प्रतिनिधि हो, जो उसे खण्ड 1 के उप-खण्ड 2 में उल्लिखित निर्वाचक मण्डल द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनेंगे, तो जहां तक विशेष रूप से रियासतों का संबंध है, वह उनकी जनता का प्रतिनिधि नहीं हो सकता। इसलिए मैं इस संशोधन का विरोध करता हूं।